स्वयं से संवाद

जे. कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के आलोक में जीवन का अन्वेषण

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया

वसन्त ऋतु, फरवरी 2019

शिक्षक, अभिभावक और समाज

सही शिक्षा शिक्षक से ही शुरू होती है। शिक्षक को स्वयं को समझकर विचार के स्थापित प्रारूपों से मुक्त होना चाहिए; क्योंकि जो कुछ वह स्वयं होता है वही वह दूसरों को देता है। यदि वह स्वयं उचित रूप से शिक्षित नहीं हुआ है तो वह उस यांत्रिक ज्ञान के अतिरिक्त, जिसके आधार पर स्वयं उसका निर्माण हुआ है, दूसरों को क्या दे सकता है?अतः समस्या बालक नहीं वरन् अभिभावक और अध्यापक है; समस्या शिक्षक को शिक्षित करने की है। यदि हम शिक्षक ही अपने को नहीं समझते, यदि हम बालक के साथ अपने संबंध को नहीं समझते, और उसे केवल जानकारियों से भरते रहते हैं तथा परीक्षाएँ उत्तीर्ण कराते रहते हैं, तो हम कैसे एक नये प्रकार की शिक्षा ला सकते हैं? छात्र इसीलिए होता है कि उसका मार्गदर्शन किया जाए और उसकी सहायता की जाए; परंतु यदि मार्गदर्शक अथवा सहायक स्वयं ही भ्रांत है, संकीर्ण है, राष्ट्रवादी है तथा सिद्धांतों से ग्रसित है तो स्वाभाविक है कि उसका शिष्य भी वही होगा जो वह है। उस अवस्था में शिक्षा और अधिक भ्रांति तथा कलह का कारण बनेगी।

यदि हमें इस सत्य का साक्षात्कार हो जाए तब हम अनुभव करेंगे कि हमारे लिए स्वयं को उचित प्रकार से शिक्षित करना कितना महत्त्वपूर्ण है। खुद को नए सिरे से शिक्षित करने की चिंता करना बालक के भविष्य के कल्याण की और उसकी सुरक्षा की चिंता से कही अधिक आवश्यक है।

शिक्षक को शिक्षित करना – अर्थात उसे स्वयं को समझने के लिए तैयार करना – एक सर्वाधिक कठिन कार्य है, क्योंकि हममें से अधिकांश व्यक्ति किसी विचार-प्रणाली में अथवा कर्म के ढाँचे में

पहले ही ढाले जा चुके हैं; हमने पहले ही खुद को किसी विचार-प्रणाली को अथवा किसी धर्म को अथवा आचार-व्यवहार के किसी विशेष मापदण्ड के प्रति समर्पित कर दिया है। यही कारण है कि हम बालक को सिखाते हैं कि वह क्या सोचे, न कि वह कैसे सोचे।

इसके अतिरिक्त अभिभावक और अध्यापक अधिकांश रूप से अपने स्वयं के द्वंद्वों और परेशानियों में व्यस्त रहते हैं। धनी हों अथवा निर्धन, अधिकांश अभिभावक अपनी व्यक्तिगत चिंताओं और मुसीबतों में खोए रहते हैं। उन्हें वर्तमान सामाजिक अथवा नैतिक पतन की कोई गंभीर चिंता नहीं होती, उनकी केवल यह चिंता होती है कि उनके बच्चे इस योग्य बनें कि संसार में सफलतापूर्वक जी सकें। वे अपने बच्चों के भविष्य के बारे में चिंतित होते हैं; वे इसके लिए उत्सुक होते हैं कि उनके बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जाए जिससे कि वे सुरक्षित पद प्राप्त कर सकें अथवा भली प्रकार विवाह कर सके।

आम धारणा के विपरीत अधिकांश अभिभावक अपने बच्चों से प्रेम नहीं करते, यद्यपि उनसे प्रेम करने की बात वे कहते रहते हैं। यदि अभिभावक वास्तव में अपने बच्चों से प्रेम करते तो संपूर्ण के विरोध में केवल परिवार और राष्ट्र पर बल नहीं दिया जाता। ऐसा करना मनुष्यों के बीच में सामाजिक और जातीय विभाजन उत्पन्न करता है तथा युद्ध और भूख की पीड़ा भी पैदा करता है। यह सचमुच बड़ा आश्चर्यजनक है कि वकील अथवा डॉक्टर होने के लिए व्यक्तियों को बड़े कठोर प्रशिक्षण से गुज़रना होता है जबकि अभिभावक बनने जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उन्हें किसी प्रकार का प्रशिक्षण नहीं लेना पड़ता।

अधिकतर यही होता है कि परिवार अपनी अलग प्रवृत्तियों के कारण पृथकता की सामान्य प्रक्रिया को प्रोत्साहित करता है और इस प्रकार समाज के अधःपतन का कारण बनता है। जब प्रेम और बोध होता है तभी पृथकता की दीवारें टूटती हैं और तभी परिवार एक बंद घेरा नहीं रह जाता, तब वह न तो एक जेल रहता है

''यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है कि अभिभावक भी उससे भली प्रकार परिचित रहें जो शिक्षक कर रहा है और बच्चों के संपूर्ण विकास में उन्हें भी गहरी दिलचस्पी हो। यह समान रूप से बच्चों के माता-पिता का भी उत्तरदायित्व है कि वे इस प्रकार की शिक्षा को बढ़ावा देने में सहायक हों। वह इसे मात्र अध्यापक के ऊपर ही न छोड़ दें जो पहले से ही काफी भार से लदे हुए हैं। बच्चे का समग्र विकास तभी संभव हो सकेगा जब अध्यापक, विद्यार्थी एवं अभिभावक के बीच सही संबंध की बुनियाद हो।''

'जीने की कला' से

पृष्ठ 3 से जारी...

कृष्णमूर्ति वीडियो हिंदी सबटाइटल्स के साथ

1. Washington DC 1985 Talk 1 एवं Talk 2.
2. Love and Freedom: Turning Point Series Talk 6
3. Krishnamurti with Rishi Valley Students 1984 Talk 3
4. Why there is such a chaos in the world? Saanen1980

इन्हें मंगवाने के लिए सम्पर्क करें :
कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221001,
ईमेल : studycentre@rajghatbesantschool.org
फोन : 0542–2441289

कृष्णमूर्ति से संबंधित वेबसाइट :
www.jkrishnamurtionline.org
www.kfionline.org
www.jkrishnamurti.org

हिंदी में उपलब्ध जे. कृष्णमूर्ति की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

समय से परे
जीवन एक अन्वेषण
अंतर्दृष्टि का प्रश्न
ज्ञात से मुक्ति
प्रथम और अंतिम मुक्ति
अंतिम वार्ताएं
शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य
स्कूलों के नाम पत्र
सुखी वही जो कुछ भी नहीं
ईश्वर क्या है?
आपको अपने जीवन में क्या करना है?
आज़ादी की खोज
प्रेम क्या है?, अकेलापन क्या है?
सत्य और यथार्थ
मन क्या है?
ये रिश्ते क्या हैं?
ध्यान
जीवन और मृत्यु
शिक्षा क्या है?
सोच क्या है?
ध्यान करने वाला कौन है?

पुस्तकों को मंगवाने के लिए सम्पर्क करें :
कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221001
ईमेल : studycentre@rajghatbesantschool.org

कृष्णमूर्ति सेंटर, राजघाट – पिछली छमाही में हुईं गतिविधियां

2018 की कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इंडिया की वार्षिक गैदरिंग इस नवंबर में राजघाट, वाराणसी में सम्पन्न हुई; केन्द्रीय विषय था 'समाज की संकट पूर्ण अवस्था और व्यक्ति का उत्तरदायित्व'। इससे पहले सितंबर में 'संस्कारबद्धता और स्व-शिक्षण' विषय पर हिन्दी में एक पाँच दिवसीय स्टडी रिट्रीट आयोजित की गयी। नवंबर के अंत में आमंत्रित सहभागियों के साथ एक छः दिवसीय संवाद रिट्रीट तथा जनवरी, 2019 में 'स्वबोध और चेतना का रूपान्तरण' विषय पर इंटरनेशनल रिट्रीट हुईं। फरवरी में छः दिन की एक स्टडी रिट्रीट का आयोजन हुआ जिसका विषय था, ''क्या करुणा हमारे दैनिक जीवन का आधार हो सकती है?''

राजघाट बेसेंट स्कूल तथा अच्युत पटवर्द्धन स्कूल की अध्यापिकाओं व अध्यापकों के साथ स्टडी सेंटर में समय-समय पर सह संवाद होता रहा। राजघाट बेसेंट स्कूल के विद्यार्थियों के समूह भी शिक्षाओं पर संवाद के लिए आते रहे। इसके अतिरिक्त भारत एवं विश्व के विभिन्न भागों से जीवन के अन्वेषण एवं कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं में रुचि रखने वाले मित्रों के साथ संवाद का सिलसिला चलता रहा।

'शिक्षाओं के साथ प्रयोग'

13 से 17 मार्च 2019 के बीच 'टेस्टिंग आउट द टीचिंग्ज़' विषय पर एक रिट्रीट का आयोजन किया जा रहा है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाएं आधारभूत रूप से प्रयोगधर्मी हैं। क्या हम इन शिक्षाओं को दैनिक जीवन की कसौटी पर आज़मा सकते हैं? बिना किसी परीक्षण के मात्र अध्ययन अथवा संवाद केवल बौद्धिक कवायद बनकर रह जाता है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं का दैनिक जीवन से जीता-जागता रिश्ता ही इस रिट्रीट के विमर्श का केन्द्रीय विषय है।

के. एफ़. आई. द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका
परिसंवाद (त्रैमासिक)

सदस्यता शुल्क :
एक वर्ष के लिए : रु. 150
पाँच वर्ष के लिए : रु. 600
दस वर्ष के लिए : रु. 1000

के. एफ़. आई. द्वारा प्रकाशित हिंदी न्यूज़लैटर
स्वयं से संवाद (वर्ष में दो अंक)

निःशुल्क

संपर्क सूत्र :
कृष्णमूर्ति सेंटर
के एफ़ आई, राजघाट, वाराणसी–221001 (उ.प्र.)
ई मेल : studycentre@rajghatbesantschool-org
फोन : 6394 751 394

''यदि हमारा गहरा और मजबूत रिश्ता प्रकृति से, उसके पेड़-पौधों, झाड़ियों, फूलों, घास के तिनकों और उमड़ते-घुमड़ते बादलों से बन सके, तो हम किसी भी कीमत पर, किसी भी सूरत में किसी भी इन्सान की हत्या नहीं करेंगे। युद्ध सुनियोजित हत्याकांड है। हम एटमी या किसी खास युद्ध के खिलाफ तो आवाज़ उठाते हैं लेकिन यह सवाल कभी नहीं करते कि युद्ध होते ही क्यों हैं, हमने यह कभी नहीं कहा कि किसी दूसरे इन्सान को मारना धरती पर सबसे बड़ा गुनाह है।''

'कृष्णमूर्ति टु हिमसेल्फ' से

और न शरणस्थल; उस अवस्था में अभिभावकों का केवल अपने बच्चों से ही नहीं बल्कि अपने पड़ोसियों से भी संवाद रहता है।

स्वयं अपनी समस्याओं में व्यस्त रहने के कारण अनेक अभिभावक अपने बच्चों के कल्याण का दायित्व अध्यापक को सुपुर्द कर देते हैं, और तब यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक अभिभावकों की शिक्षा में सहायता करें।

उसे उनसे बात करनी चाहिए और उन्हें समझाना चाहिए कि विश्व की भ्रांत अवस्था स्वयं अपनी व्यक्तिगत भ्रांतियों का प्रतिबिंब मात्र है। उसे यह बताना चाहिए कि वैज्ञानिक प्रगति अपने आप ही प्रचलित मूल्यों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं उत्पन्न करेगी, कि तकनीकी प्रशिक्षण ने, जिसे आज शिक्षा कहा जाता है, मनुष्य को मुक्ति नहीं दी और न ही उसे और अधिक सुखी बनाया है, और यह भी बताना चाहिए कि वर्तमान परिवेश को स्वीकार करने के लिए बालक को संस्कारबद्ध करना प्रज्ञा के विकास के अनुकूल न होगा। शिक्षक द्वारा अभिभावकों को यह बता दिया जाना चाहिए कि वह उनके बालक के लिए क्या करने का प्रयत्न कर रहा है तथा अपने कार्य को वह कैसे आरंभ कर रहा है। उसे अभिभावकों के विश्वास को जगाना होगा, अज्ञानी जनसाधारण से व्यवहार करने वाले विशेषज्ञ का चोगा पहनकर नहीं, बल्कि बालक के स्वभाव, उसकी कठिनाइयों, अभिवृत्तियों आदि के विषय में उनसे बातचीत करके।

यदि अध्यापक बालक में व्यक्तिगत रूप से वास्तविक रुचि लेता है तो अभिभावकों को उस पर विश्वास होगा। इस प्रक्रिया में अध्यापक अभिभावकों को तथा स्वयं अपने को शिक्षित कर रहा है, वह अभिभावकों से भी बदले में कुछ सीख रहा है। सम्यक् शिक्षा एक पारस्परिक कार्य है जिसके लिए धैर्य, सहानुभूति तथा प्रेम की आवश्यकता होती है। एक प्रबुद्ध समाज में प्रबुद्ध अध्यापकों को इस समस्या पर विचार करना चाहिए कि बच्चों को कैसे विकसित किया जाए, और रुचि रखने वाले अध्यापकों तथा विचारशील अभिभावकों को उन्हीं दिशाओं में छोटे स्तर पर प्रयोग करना चाहिए।

क्या कभी अभिभावकों ने अपने से यह प्रश्न किया है कि उन्हें बच्चे क्यों चाहिए? क्या वे अपने नाम को बनाए रखने के लिए, अपनी संपत्ति सुरक्षित रखने के लिए बच्चे चाहते हैं? क्या वे स्वयं अपने आनंद के लिए, अपनी भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बच्चे चाहते हैं? यदि ऐसा है तो बच्चे अपने अभिभावकों की इच्छाओं और आशंकाओं के प्रक्षेपण मात्र हैं।

क्या अभिभावक यह दावा कर सकते हैं कि वे अपने बच्चों से प्रेम करते हैं, जबकि दोषपूर्ण शिक्षा देकर वे उनमें द्वेष, बैर-भाव तथा महत्त्वाकांक्षा का पोषण कर रहे हैं? क्या यह प्रेम है जो ऐसे राष्ट्रीय और जातीय संघर्ष उत्प्रेरित करता है जिनसे युद्ध, विनाश और अपार कष्ट पैदा होते हैं, जो धर्मों और विचार-प्रणालियों के नाम पर मनुष्य को मनुष्य के विरोध में खड़ा कर देता है?

बालक को दूषित शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति देकर नहीं बल्कि स्वयं अपनी जीवन-पद्धति के द्वारा भी अनेक अभिभावक उसे द्वंद्व और दुख के मार्गों पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं; और यह जब वह बड़ा होता है, कष्ट उठाता है, वे उसके लिए प्रार्थना करते हैं या तो फिर उसके बर्ताव के बहाने ढूँढते हैं। अपने बच्चों के लिए अभिभावकों का कष्ट उठाना एक प्रकार की अधिकार-वृत्ति वाली आत्म-दया है, जिसका अस्तित्व तभी होता है जब प्रेम नहीं होता।

यदि अभिभावक अपने बच्चों से प्रेम करें तो वे राष्ट्रवादी नहीं होंगे, वे किसी एक देश से अपना तादात्म्य नहीं रखेंगे क्योंकि राज्य की उपासना युद्ध लाती है जो उनकी संतानों की हत्या करता है अथवा उन्हें विकलांग बनाता है। यदि अभिभावक अपने बच्चों से प्रेम करते हैं तो वे यह भी जानेंगे कि संपत्ति के साथ सही संबंध क्या होता है; क्योंकि परिग्रही प्रवृत्ति ने सम्पत्ति को बहुत अधिक परंतु भ्रामक महत्त्व दे दिया है जो विश्व को नष्ट कर रहा है। यदि अभिभावक अपने बच्चों से प्रेम करते हैं तो वे किसी संगठित धर्म को नहीं मानेंगे; क्योंकि धर्म-मत और विश्वास, लोगों को विरोधी गुटों में विभाजित कर देते हैं, मनुष्य और मनुष्य के बीच संघर्ष उत्पन्न करते हैं। अतः यदि अभिभावक अपने बच्चों से सचमुच प्रेम करते हैं तो वे द्वेष और कलह को त्याग कर वर्तमान समाज की संरचना में मौलिक परिवर्तन करना आरंभ करेंगे।

जब तक हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे शक्तिशाली बनें, ऊँचे और अच्छे पदों को प्राप्त करें, अधिकाधिक सफल हों, तब तक हमारे हृदय में प्रेम नहीं है; क्योंकि सफलता की उपासना द्वंद्व और कष्ट को प्रोत्साहन देती है। अपने बच्चों से प्रेम करने का अर्थ है उनके साथ

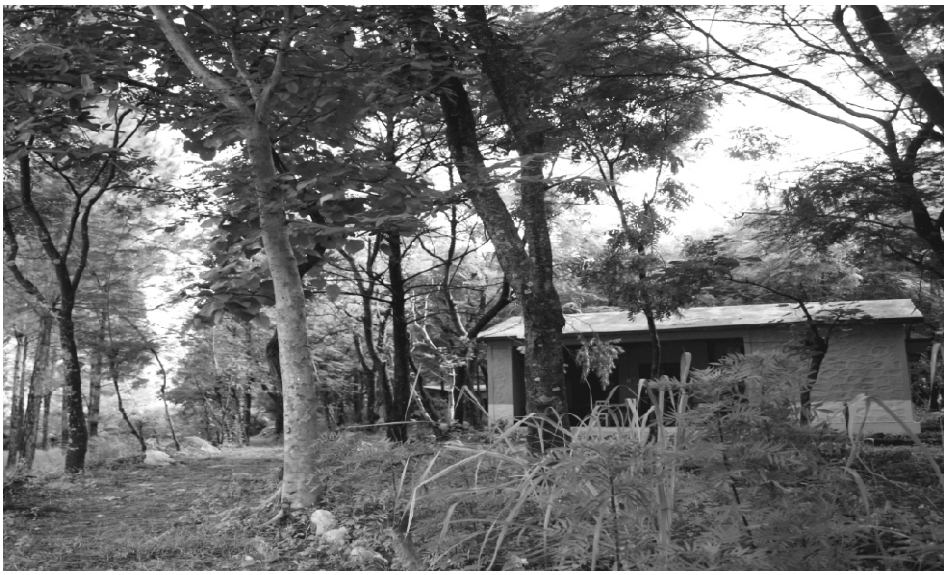

''कुछ लोग कह सकते हैं कि सजग हो जाने के लिए उनके पास समय नहीं है, वे अत्यधिक व्यस्त हैं, आदि-आदि, परंतु यह मामला समय का कम और अभिरुचि का अधिक है। तब, वे चाहे जिस भी कार्य में व्यस्त रहें, उनमें सजगता की शुरुआत हो ही जाएगी।''

'ये रिश्ते क्या हैं?' से

पूर्णतया संवाद में होना, यह देखना कि उनको ऐसी शिक्षा मिल रही है जो उनके लिए संवेदनशील, प्रज्ञापूर्ण और समन्वित बनने में सहायक हो।

जब कोई अध्यापक अध्यापन करने का निश्चय कर लेता है तो सबसे पहला प्रश्न, जो उसे अपने से करना चाहिए, यह है कि अध्यापन का ठीक-ठीक अर्थ क्या है? क्या वह सामान्य विषयों को पारंपरिक तरीके से पढ़ाने जा रहा है? क्या वह बालक को सामाजिक यंत्र का एक पुर्जा बनाने के लिए संस्कारबद्ध करना चाहता है अथवा वह चाहता है कि एक समन्वित, सृजनशील मनुष्य बनने में, मिथ्या मूल्यों के लिए एक खतरा बनने में, वह बालक के लिए सहायक हो? और यदि शिक्षक बालक की सहायता करना चाहता है कि वह उन मूल्यों और उनके प्रभावों को समझे तथा उनकी छान-बीन करे जो उसे चारों ओर से घेरे हुए हैं और जिनका वह एक अंग है, तो क्या यह आवश्यक नहीं कि शिक्षक स्वयं के प्रति जागरूक हो? यदि कोई व्यक्ति अंधा है तो नदी के पार पहुँचने में वह दूसरे की कैसे सहायता कर सकता है?

निस्संदेह, यह आवश्यक है कि पहले अध्यापक स्वयं समझना आरंभ करे। उसे निरन्तर चौकन्ना रहना चाहिए तथा स्वयं अपने विचारों और भावनाओं के प्रति अत्यंत जागरूक होना चाहिए; उसे उन तरीकों के प्रति जागरूक होना चाहिए जिनसे वह संस्कारबद्ध है; उसे अपनी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के प्रति जागरूक होना चाहिए। इसी जागरूकता से प्रज्ञा आती है, और इसी से अन्य व्यक्तियों तथा वस्तुओं के साथ उसके संबंध में मौलिक परिवर्तन होता है।

प्रज्ञा का परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने से कोई संबंध नहीं है। प्रज्ञा वह सहज प्रत्यक्ष दृष्टि है जो मनुष्य को शक्तिशाली एवं स्वतंत्र बनाती है। बालक में यदि इस प्रज्ञा को जगाना है तो यह आवश्यक है कि वह स्वयं भी समझे कि प्रज्ञा क्या है; क्योंकि जब स्वयं अपने ही अंदर अनेक प्रकार से उस प्रज्ञा का अभाव रहेगा तो हम बालक को प्रज्ञावान्, विवेकपूर्ण होने के लिए कैसे कह सकते हैं? समस्या यहाँ केवल छात्र की कठिनाइयों की ही नहीं है बल्कि स्वयं अपनी भी है : हमारे भीतर भी भय हैं जो निरन्तर संचित होते रहते हैं; हम भी दुखों और कुंठाओं से मुक्त नहीं हैं। प्रज्ञावान् बनने में बालक की सहायता करने के लिए हमें अपने अंदर की उन बाधाओं को तोड़ देना है जो हमें मंद और विचारहीन बनाती हैं।

जब हम स्वयं व्यक्तिगत सुरक्षा की खोज में लगे हैं तो हम बालकों को कैसे इसकी शिक्षा दे सकते हैं कि वे इसकी खोज न करें? यदि हम अभिभावक तथा अध्यापक ही जीवन के प्रति पूर्णरूप से खुले नहीं हैं और यदि हम ही अपने चारों ओर सुरक्षात्मक दीवारें खड़ी करेंगे तो फ़िर बच्चों के लिए क्या आशा की जा सकती है? सुरक्षा के लिए संघर्ष विश्व में चारों ओर बड़ी दुर्व्यवस्था उत्पन्न कर रहा है और इस संघर्ष का सही महत्त्व जानने के लिए यह आवश्यक है कि अपनी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं के प्रति जागरूक होकर हम स्वयं अपनी प्रज्ञा को जगाएँ। हमें उन सभी मूल्यों के विषय में प्रश्न उठाना आरंभ करना चाहिए जो आज हमें चारों ओर से घेरे है।

यह उचित नहीं है कि उसी ढाँचे में बिना विचार के हम अपने को फिट करते रहें जिसमें हम पले हैं। यदि हम अपने को नहीं समझते तो कैसे कभी भी व्यक्ति में, और इस प्रकार समाज में, सामंजस्य हो सकता है? जब तक शिक्षक अपने को नहीं समझता, जब तक वह स्वयं अपनी संस्कारबद्ध प्रतिक्रियाओं को नहीं देखता और अपने को प्रचलित मूल्यों से मुक्त करना आरंभ नहीं करता, तब तक वह कैसे बालक में प्रज्ञा जाग्रत कर सकता है? और यदि वह बालक में प्रज्ञा जाग्रत नहीं कर सकता तो फिर उसका कार्य ही क्या है?

स्वयं अपने विचारों और भावनाओं की प्रतिक्रियाओं को समझकर ही हम एक स्वतंत्र मनुष्य बनने में बालक की वास्तविक सहायता कर सकते हैं, और यदि शिक्षक का इससे कोई गहरा एवं सक्रिय संबंध है, तो उसमें केवल बालक के प्रति ही नहीं, अपने प्रति भी गहरी जागरूकता होगी।

हममें से बहुत कम ही लोग ऐसे हैं जो स्वयं अपने विचारों और भावनाओं का अवलोकन करते हैं। यदि वे विचार एवं भावनाएँ हमें कुरूप प्रतीत होती हैं तो हम उनके पूरे तात्पर्य को समझने का प्रयत्न नहीं करते; हम या तो उन्हें केवल रोकने का प्रयत्न करते हैं या उनकी उपेक्षा कर देते हैं। हमें स्वयं अपने प्रति गहरी जागरूकता नहीं है। हमारे विचार और हमारी भावनाएँ घिसी-पिटी हैं, यंत्रवत् हैं। हम कुछ विषय सीखते हैं, कुछ जानकारी इकट्ठा करते हैं, और फिर वही बच्चों तक पहुँचाते हैं।

परंतु यदि हमारी अभिरुचि सक्रिय है तो हम केवल इसका ही पता लगाने का प्रयत्न नहीं करेंगे कि विश्व के विभिन्न भागों में शिक्षा के कौन से प्रयोग हो रहे हैं, वरन शिक्षा की सम्पूर्ण समस्या के ही प्रति स्वयं अपने दृष्टिकोण को बहुत अधिक स्पष्ट करना चाहेंगे; हम अपने से यह प्रश्न करेंगे कि क्यों और किस उद्देश्य से हम बालकों को तथा अपने आप को शिक्षित कर रहे हैं, हम अस्तित्व के अर्थ का, व्यक्ति के समाज के प्रति सम्बंध का अन्वेषण करेंगे। निस्संदेह शिक्षकों को इन समस्याओं के प्रति जागरूक होना चाहिए और बालक के ऊपर स्वयं अपनी विचित्रताओं तथा विचार की आदतों का आरोपण किए बिना उन समस्याओं के सत्य की खोज में बालक की सहायता करनी चाहिए।

केवल किसी व्यवस्था-प्रणाली का अनुगमन करना, चाहे वह राजनीतिक हो

अथवा शैक्षिक, हमारी अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान नहीं करेगा, और स्वयं किसी समस्या को समझने की अपेक्षा यह समझना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उस समस्या के प्रति अभिमुख होने का हमारा क्या तरीका है।

यदि बालकों को भय से मुक्त होना है– चाहे वह भय अपने अभिभावकों का हो अथवा अपने परिवेश या ईश्वर का हो– तो शिक्षक को स्वयं भी कोई भय नहीं होना चाहिए। परंतु यही कठिनाई है; ऐसे अध्यापकों को खोजना, जो किसी प्रकार के भय के शिकार न हों, आसान नहीं है। भय विचार को संकीर्ण कर देता है तथा आगे बढ़ने की प्रवृत्ति को सीमित करता है, और एक भयभीत अध्यापक भय–मुक्ति की अवस्था के गहरे महत्त्व को नहीं समझा सकता। अच्छाई की तरह भय भी संक्रामक होता है। यदि शिक्षक स्वयं प्रच्छन्न रूप से भयभीत है तो वह उस भय को अपने छात्रों में सम्प्रेषित कर देगा, यद्यपि यह हो सकता है कि संक्रमण तत्काल न दिखाई दे।

उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि एक अध्यापक जनमत से भयभीत है; वह अपने भय की मूर्खता को समझता है और फिर भी उसके परे नहीं जा पाता। तो उसे क्या करना चाहिए? कम–से–कम वह स्वयं अपने से उस भय को स्वीकार तो कर ही सकता है और अपनी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं को छात्रों के सामने रखकर तथा उनके विषय में उनसे खुली चर्चा करके भय के स्वरूप को समझने में उनकी सहायता कर सकता है। ईमानदारी तथा सच्चाई का यह दृष्टिकोण छात्रों को बड़ा प्रोत्साहित करेगा और वे भी अपने बीच और अपने अध्यापक के साथ उसी प्रकार से खुले और निश्छल बनेंगे।

बालक को स्वतंत्रता देने के लिए शिक्षक को स्वयं भी स्वतंत्रता के निहितार्थों के प्रति तथा उसके पूरे महत्त्व के प्रति जागरूक होना चाहिए। किसी अन्य व्यक्ति का उदाहरण और किसी भी प्रकार का दबाव इस स्वतंत्रता को लाने में सहायक नहीं होते, पर केवल स्वतंत्रता में ही आत्म–अन्वेषण तथा अंतर्दृष्टि संभव होती है।

बालक के ऊपर उसके चारों ओर के लोगों तथा वस्तुओं का प्रभाव पड़ता है; इन प्रभावों और उनके वास्तविक मूल्य को स्पष्ट करने में सही शिक्षक को बालक की सहायता करनी चाहिए। समाज अथवा परंपरा के प्रामाण्य के द्वारा सम्यक् मूल्यों को नहीं खोजा जा सकता; केवल व्यक्तिगत विचारशीलता ही उन्हें प्रकट कर सकती है।

यदि कोई व्यक्ति इसको गहराई से समझता है तो वर्तमान व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों के प्रति अंतर्दृष्टि जगाने में वह बिल्कुल आरंभ से ही बालक को प्रोत्साहित करेगा। उसका प्रोत्साहन किन्हीं विशेष प्रकार के मूल्यों की खोज के लिए नहीं होगा बल्कि उसका प्रयास होगा कि बालक की खोज सभी वस्तुओं के वास्तविक जीवन–मूल्य के प्रति हो। वह उसकी निर्भय होने में सहायता करेगा, जिसका अर्थ है कि सभी प्रकार के आधिपत्य से मुक्ति – वह आधिपत्य चाहे अध्यापक का हो अथवा परिवार का अथवा समाज का – जिससे कि प्रेम और अच्छाई में वह एक व्यक्ति के रूप में खिल सके। इस प्रकार स्वतंत्रता की ओर बढ़ने में छात्र की सहायता करके शिक्षक स्वयं अपने जीवन–मूल्यों को भी बदल रहा है; वह भी 'मैं' और 'मेरा' से मुक्ति पाना शुरू कर रहा है, वह भी प्रेम और अच्छाई में खिल रहा है। परस्पर शिक्षण की यह प्रक्रिया अध्यापक और छात्र के बीच एक बिल्कुल अलग ही संबंध उत्पन्न करती है। किसी भी प्रकार का आधिपत्य या बाध्यता, स्वतंत्रता और प्रज्ञा के लिए एकदम बाधा है। सही शिक्षक का समाज में न तो कोई अधिकार–प्राधिकार होता है, न सत्ता; वह समाज के विधि–निषेधों और मान्यताओं से परे होता है। यदि हम बालक को इन बाधाओं से मुक्त करना चाहते हैं– बाधाएँ जिन्हें स्वयं उसने तथा उसके परिवेश ने

उत्पन्न किया है– तो बाध्यता और आधिपत्य के प्रत्येक रूप को समझना तथा समाप्त करना होगा; परंतु यदि शिक्षक स्वयं ही अपने को पंगु बनाने वाली सभी प्रकार की सत्ता से मुक्त नहीं करता, तो ऐसा करना संभव नहीं है।

दूसरे का अनुगमन करना, चाहे वह कितना भी महान क्यों न हो, 'स्व' की प्रक्रिया की खोज में बाधक बनता है; बने-बनाए यूटोपिया (काल्पनिक स्वर्गराज्य) के आश्वासनों के पीछे दौड़ने से मन स्वयं अपनी वासना के घेरे में कैद रहता है और फिर भी उसके प्रति अज्ञानी रहता है। यह वासना निरन्तर ही अपनी सुविधा, सत्ता तथा दूसरे की सहायता को प्राप्त करने के पीछे दौड़ती रहती है। पुरोहित, राजनीतिज्ञ, वकील, सैनिक, सभी हमारी 'सहायता' के लिए तैयार रहते हैं; परंतु ऐसी सहायता प्रज्ञा और स्वतंत्रता को नष्ट करती है। जिस सहायता की हमें आवश्यकता है वह स्वयं हमसे बाहर कहीं नहीं है। हमें सहायता के लिए भिक्षा माँगने की आवश्यकता नहीं है; जब हम उस काम में नम्रतापूर्वक लगे होते हैं जिसके प्रति हम समर्पित हैं और दिन-प्रतिदिन आनेवाली परीक्षा की घड़ियों तथा आपत्तियों को समझने के लिए तैयार रहते हैं, तो वह सहायता बिना हमारे प्रयत्न के ही आ जाती है।

समर्थन तथा प्रोत्साहन की चेतन अथवा अचेतन लालसा और ललक स्वयं अपनी प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है जो सदा तुष्ट कर देने का काम करती है। ऐसी लालसा से हमें बचना होगा। किसी ऐसे व्यक्ति का होना जो हमें प्रोत्साहित करे, जो हमारा नेतृत्व करे तथा जो हमें सांत्वना दे, हमें बड़ा सुविधाजनक लगता है; परंतु दूसरे को मार्ग निर्देशक अथवा अधिकारी समझकर उसकी ओर देखने की यह आदत हमारी व्यवस्था में शीघ्र ही विष का कार्य करती है। जैसे ही हम मार्ग निर्देशन के लिए दूसरों पर आश्रित होते हैं कि हम अपने मूल लक्ष्य को भूल जाते हैं, जो कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और प्रज्ञा को जगाना था।

सभी प्रकार की सत्ता एक बाधा है। यह आवश्यक है कि शिक्षक छात्र के लिए सत्ता या प्रामाण्य न बने। सत्ता का निर्माण केवल चेतन ही नहीं वरन अचेतन प्रक्रिया भी है।

छात्र अनिश्चित है, अँधेरे में टटोल रहा है; अध्यापक अपने ज्ञान में निश्चित है, अपने अनुभव में दृढ़ है। अध्यापक की दृढ़ता और निश्चितता में छात्र आश्वस्त रहना भी चाहता है; परंतु ऐसा आश्वासन न तो स्थायी होता है और न सत्य। ऐसा अध्यापक जो चेतन अथवा अचेतन रूप से पर-निर्भरता को प्रोत्साहित करता है, अपने छात्रों के लिए कभी अधिक सहायक सिद्ध नहीं हो सकता। अपने ज्ञान से वह उन्हें जीत सकता है, अपने व्यक्तित्व से वह उन्हें चमत्कृत कर सकता है, परंतु वह एक सही शिक्षक नहीं है, क्योंकि उसका ज्ञान और उसका अनुभव उसकी एक आदत है, उसकी सुरक्षा है, उसका जेलखाना है, और जब तक वह उनसे अपने को मुक्त नहीं करता, समन्वित मनुष्य बनने में वह अपने छात्रों की सहायता नहीं कर सकता।

एक सही शिक्षक बनने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक पुस्तकों और प्रयोगशालाओं से अपने को निरन्तर मुक्त करता रहे, उसे सदा इसकी सावधानी बरतनी चाहिए कि छात्र कहीं उसे उदाहरण, आदर्श, प्रामाण्य न बना लें। जब अध्यापक अपने छात्रों के माध्यम से अपने को परितुष्ट करने की अभिलाषा रखता है, जब छात्रों की सफलता उसकी अपनी सफलता होती हे, तब उसका शिक्षण आत्म-सातत्य का, अपने अहं को ही बनाए रखने का, एक बहाना होता है, और यह स्वबोध तथा स्वतंत्रता के लिए हानिकारक है। सही अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह इन बाधाओं के प्रति जागरूक हो, जिससे कि वह अपने छात्रों को केवल अपने ही अधिकार से नहीं वरन उनके अपने आत्म-केंद्रित करने वाले प्रयासों से भी मुक्त कर सके।

दुर्भाग्य से जब किसी समस्या को समझने का प्रश्न उठता है, अधिकांश अध्यापक उस समस्या को समझने में छात्र को समान भागीदार नहीं बनाते; अपने ऊँचे ओहदे से वे शिष्य को आदेश देते हैं मानो वह उनसे कहीं नीचे हो। ऐसा संबंध छात्र एवं अध्यापक दोनों में भय उत्पन्न करता है। इस असमान संबंध का क्या कारण है? क्या अध्यापक भयभीत है कि उसकी पोल खुल जाएगी? क्या अध्यापक अपनी तुनुकमिजाजी को, अपने महत्त्व को छिपाने के लिए एक सम्मानजनक दूरी बनाए रखता है? श्रेष्ठ भावना वाली यह पृथकता उन दीवारों को तोड़ने में किसी प्रकार की सहायता नहीं करती जो व्यक्तियों को अलग-थलग रखती हैं। आखिरकार शिक्षक तथा उसके विद्यार्थी दोनों ही अपने को शिक्षित करने में एक-दूसरे की सहायता कर रहे हैं।

> ''मन किस प्रकार से कार्य करता है इसे जानना और उससे ऊपर उठ जाना ही मुझे वास्तविक शिक्षा जान पड़ता है।''
>
> 'शिक्षा क्या है?' से

सभी प्रकार के संबंधों को पारस्परिक शिक्षा का रूप ले लेना चाहिए; और चूँकि ज्ञान, उपलब्धि, महत्त्वाकांक्षा आदि से मिलने वाला सुरक्षात्मक अलगाव केवल द्वेष एवं विरोध ही उत्पन्न करता है, इसलिए सही शिक्षक को अपने चारों ओर की इन दीवारों को पार करना चाहिए जिनसे वह स्वयं घिरा है।

सही शिक्षक चूँकि पूर्णतया व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा उसके समन्वय के लिए ही समर्पित है, अतः वह एक गहरे अर्थ में सच्चा धार्मिक व्यक्ति है। वह किसी सम्प्रदाय का नहीं होता और न ही किसी संगठित धर्म का; वह विश्वासों एवं कर्मकाण्डों से भी मुक्त होता है, क्योंकि वह जानता है कि वे सब भ्रम हैं, कल्पनाएँ तथा अंधविश्वास हैं, जो उनको बनाने वालों की वासनाओं द्वारा प्रक्षेपित किये गये हैं। वह जानता है कि यथार्थ अथवा ईश्वर तभी प्रकट होता है जब स्वबोध हो अतएव स्वतंत्रता हो।

जिन लोगों के पास कोई अकादमिक पदवी नहीं होती है वे प्रायः बड़े अच्छे अध्यापक बनते हैं, क्योंकि वे प्रयोग के लिए तैयार रहते हैं; विशेषज्ञ न होने के कारण वे सीखने में, जीवन को समझने में रुचि रखते हैं। एक सच्चे अध्यापक के लिए अध्यापन तकनीक नहीं है, वह उसकी जीवन-पद्धति है; एक बड़े कलाकार की भाँति वह अपने सृजनशील कार्य को छोड़ने के बजाय भूखों मरना अधिक पसंद करेगा। जब तक व्यक्ति में अध्यापन करने की ऐसी ज्वलंत अभिलाषा न हो, उसे अध्यापक नहीं बनना चाहिए। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है कि व्यक्ति इसका पता लगाए कि उसमें यह प्रतिभा है अथवा नहीं; केवल जीविकोपार्जन के लिए अध्यापन में आना उचित न होगा।

जब तक अध्यापन एक व्यवसाय है, जीविकोपार्जन का एक साधन है, न कि एक ऐसी वृत्ति जिसके लिए व्यक्ति समर्पित है, तब तक हमारे तथा संसार के बीच

एक गहरी खाई बनी रहेगी; हमारा घरेलू जीवन तथा हमारा काम एक-दूसरे से पृथक् एवं विशिष्ट बने रहेंगे। जब तक शिक्षा दूसरी नौकरियों की भाँति एक नौकरी है, तब तक व्यक्तियों में तथा तमाम स्तरों पर विभाजित समाज में द्वंद्वतथा वैर-भाव अनिवार्य रहेंगे, एवं प्रतिद्वंद्विता, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं का निष्ठुरतापूर्वक अनुसरण और राष्ट्रीय तथा जातीय विभाजनों में निरन्तर वृद्धि होती रहेगी और ये ही हैं जो संघर्ष एवं कभी न समाप्त होने वाले युद्धों का कारण बनते हैं।

परंतु जब सही प्रकार के शिक्षक बनने के लिए हम अपने को समर्पित कर देते हैं, तब हम अपने घर तथा स्कूल के जीवन के बीच दीवारें नहीं खड़ी करते, क्योंकि सर्वत्र हमारा संबंध स्वतंत्रता तथा प्रज्ञा से होता है। हम धनी तथा निर्धन सभी के बच्चों को एक समान देखते हैं तथा प्रत्येक बालक को एक ऐसा व्यक्ति मानते हैं जिसका अपना स्वभाव, अपनी विरासत है, महत्त्वाकांक्षाएँ हैं। हमारा संबंध किसी वर्ग से नहीं होता, न तो शक्तिशाली से और न निर्बल से; हमारा संबंध केवल व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा अखंडता से होता है।

यह आवश्यक है कि सही शिक्षा के प्रति समर्पण पूर्णतया स्वेच्छा से हो। वह किसी प्रकार के दबाव या व्यक्तिगत लाभ की आशा के कारण नहीं होना चाहिए, और इसे उस भय से मुक्त होना चाहिए जो सफलता तथा उपलब्धि की लालसा से उत्पन्न होता है। विद्यालय की सफलता अथवा असफलता के साथ व्यक्ति का तादात्म्य भी व्यक्तिगत स्वार्थ के क्षेत्र के ही अंतर्गत आता है। यदि अध्यापन करना व्यक्ति की वृत्ति है, यदि सही शिक्षा को वह मूलभूत आवश्यकता समझता है, तो स्वयं अपनी अथवा दूसरे की महत्त्वाकांक्षाओं को वह अपने मार्ग में बाधक न बनने देगा और न अपने रास्ते से विचलित होगा। वह अपने कार्य के लिए समय तथा अवसर खोज ही लेगा और पुरस्कार, सम्मान अथवा यश की लालसा के बिना ही उसमें लग जाएगा। तब दूसरी सभी बातें, परिवार, व्यक्तिगत सुरक्षा, सुविधा आदि गौण हो जाती हैं।

> ''जब मैं देखता हूं कि मैं आक्रामक हूं तो मैं 'जो मैं हूं' उसे बदलता नहीं, बल्कि मैं आक्रामकता की गतिविधि का ध्यान से अवलोकन करता हूं। उस अवलोकन में भय नहीं होता, बाध्यता नहीं होती। 'जो मैं हूं' का यह अवलोकन ही एक सर्वथा भिन्न गतिविधि को अस्तित्व में लाता है। निश्चित ही, यही शिक्षा का कार्य है, यही सृजन है।''
>
> 'शिक्षा क्या है?' से

यदि अच्छा शिक्षक होने के प्रति हमारी निष्ठा और लगन है तो हम शिक्षा की किसी विशेष प्रणाली से ही नहीं, वरन् सभी प्रणालियों से पूर्णतया असंतुष्ट रहेंगे, क्योंकि हम देखेंगे कि कोई भी शिक्षण-प्रणाली व्यक्ति को मुक्त नहीं कर सकती। कोई पद्धति अथवा प्रणाली उसे भिन्न प्रकार के मूल्यों की किसी दूसरी व्यवस्था से संस्कारित तो कर सकती है, परंतु उसे मुक्त नहीं कर सकती।

हमें इसकी भी बड़ी सावधानी रखनी होगी कि हम कहीं अपनी ही किसी विशेष प्रणाली के फंदे में न फँस जाएँ जिसे हमारा मन सदा रचता रहता है। आचरण अथवा कार्य के किसी प्रारूप को अपना लेना एक सुविधाजनक एवं सुरक्षित प्रक्रिया है, और यही कारण है कि मन अपनी ही निर्मिति में शरण लेता है। निरन्तर सचेत रहना कष्टदायक और श्रमयुक्त होता है, जबकि किसी प्रणाली के विकास तथा उसके अनुगमन के लिए विचारशीलता की आवश्यकता नहीं होती। पुनरावृत्ति तथा आदत मन को आलसी बनने की ओर प्रवृत्त करती हैं; उसे जगाने के लिए एक चोट की आवश्यकता होती है- चोट, जिसे तब हम समस्या की संज्ञा दे देते हैं। इस समस्या का समाधान हम अपनी जीर्ण-शीर्ण व्याख्याओं, औचित्य-समर्थनों एवं निंदाओं से करते हैं और ये सभी मन को पुनः सुला देते हैं। इस प्रकार की तंद्रा में मन निरन्तर फँसता रहता है। एक सही शिक्षक केवल अपने में ही इसका अंत नहीं करता, बल्कि उसके प्रति जागरूक रहने में अपने छात्रों की भी सहायता करता है।

कुछ व्यक्ति यह प्रश्न कर सकते हैं कि ''सही शिक्षक कैसे बना जाता है?'' निस्संदेह 'कैसे' का प्रश्न मन के मुक्त होने का सूचक नहीं है; वह एक ऐसे मन का सूचक है जो भीरु है; जो किसी लाभ, किसी परिणाम की खोज में लगा है। कुछ बनने की आशा एवं प्रयत्न मन को उसके इच्छित लक्ष्य के अनुरूप बनाते हैं; जबकि मुक्त मन सतत रूप से जागरूक रहता है, सीखता रहता है और इस प्रकार स्वनिर्मित बाधाओं को तोड़ कर आगे निकलता रहता है।

स्वतंत्रता आरंभ में ही होती है - वह

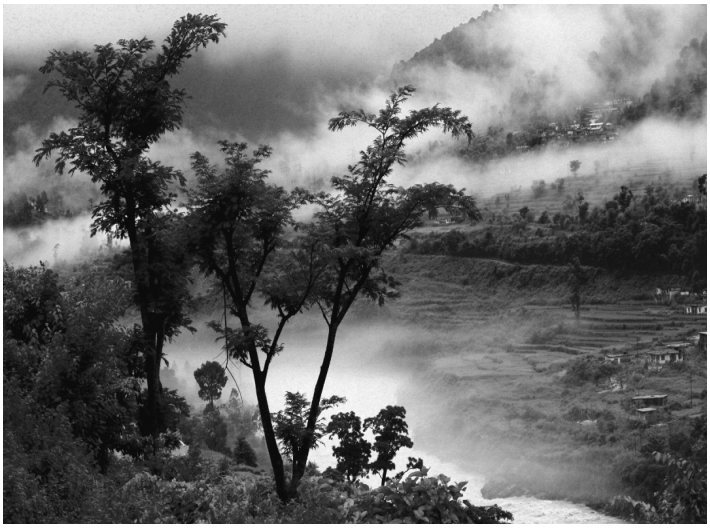

कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे अंत में प्राप्त किया जाता है। जैसे ही कोई व्यक्ति पूछता है ''कैसे?'' तो उसके सामने अनेक ऐसी कठिनाइयाँ आ जाती हैं जिन्हें सुलझाया नहीं जा सकता। शिक्षा के लिए अपना जीवन समर्पित करने के लिए इच्छुक अध्यापक कभी ऐसा प्रश्न नहीं करेगा, क्योंकि वह जानता है कि कोई भी ऐसी प्रणाली नहीं है जिससे वह सही प्रकार का शिक्षक बन सके। यदि व्यक्ति की जीवंत अभिरुचि है तो वह किसी ऐसी प्रणाली की माँग ही नहीं करेगा जो इच्छित परिणाम का आश्वासन देती हो।

क्या कोई प्रणाली हमें प्रज्ञावान् बना सकती है? हमारे ऊपर किसी प्रणाली की सान चढ़ायी जा सकती है, हम पदवियाँ प्राप्त कर सकते हैं, आदि-आदि; परंतु क्या तब हम एक शिक्षक होंगे, अथवा किसी व्यवस्था-प्रणाली के केवल एक मूर्त रूप होंगे? पुरस्कार की इच्छा अथवा एक असाधारण शिक्षक कहलाने की इच्छा केवल मान्यता एवं प्रशंसा की लालसा है, और यह ठीक है कि प्रशंसित तथा प्रोत्साहित किया जाना कभी-कभी अच्छा लगता है परंतु यदि अपनी अभिरुचि बनाए रखने के लिए कोई उस पर निर्भर करने लगे, तो वह एक नशा हो जाता है जिससे व्यक्ति शीघ्र ही मुरझा जाता है। प्रशंसा तथा प्रोत्साहन की आशा करना बिल्कुल अपरिपक्वता है।

यदि किसी नवीन वस्तु की रचना करनी है, तो यह आवश्यक है कि हम सतर्क एवं स्फूर्तिवान् हों, न कि झगड़ते रहें या शिकायत करते रहें। यदि कोई अपने कार्य में कुण्ठा का अनुभव करता है तो प्रायः ऊब एवं थकावट उत्पन्न होती है। यदि व्यक्ति की रुचि नहीं है तो उसे अध्यापन करना जारी नहीं रखना चाहिए।

परंतु अध्यापकों में प्रायः जीवंत अभिरुचि का अभाव क्यों होता है? वे कुण्ठा का अनुभव क्यों करते हैं? परिस्थितियों से बाध्य होकर किसी कार्य को करने की वजह से कुण्ठा उत्पन्न नहीं होती; वह तो तब उत्पन्न होती है जब हम अपने बारे में यही ठीक से नहीं जानते कि वह क्या है जिसे वास्तव में हम करना चाहते हैं। भ्रांत होकर हम चारों ओर धक्के खाते हैं और तब अंत में कहीं ऐसी जगह टिक जाते हैं जहाँ हमारी कोई रुचि नहीं होती।

यदि शिक्षा हमारी वास्तविक वृत्ति है तो तात्कालिक रूप से हम कुण्ठा का अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि हमें वर्तमान शैक्षिक भ्रांति से बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं दिखाई देता; परंतु जैसे-जैसे हम सम्यक् शिक्षा के निहितार्थों को देख और समझ लेंगे, हममें समग्र ऊर्जा और उत्साह लौट आएंगे। यह किसी संकल्प अथवा दृढ़ निश्चय का विषय नहीं, प्रत्यक्ष दर्शन एवं अवबोध की बात है।

यदि शिक्षण किसी व्यक्ति की वृत्ति है और यदि वह उचित शिक्षा के गंभीर महत्त्व को देखता है तो वह सही प्रकार का शिक्षक हुए बिना नहीं रह सकता। उसके लिए किसी प्रणाली का अनुगमन करने की आवश्यकता नहीं है। इस तथ्य का अवबोध-मात्र ही कि व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसके जीवन में अखंडता को उपलब्ध करने के लिए सम्यक् शिक्षा अपरिहार्य है, व्यक्ति में मौलिक परिवर्तन ले आता है। यदि कोई इसके प्रति जागरूक हो जाता है कि उचित शिक्षा के ही द्वारा शांति एवं सुख संभव है, तो वह स्वभावतः अपने जीवन एवं अभिरुचि को उसके लिए अर्पित कर देगा।

बालक को हम इसलिए शिक्षित करते हैं कि वह आंतरिक रूप से समृद्ध हो सके। इसके परिणामस्वरूप वह अपनी सम्पत्ति को भी सही मूल्य प्रदान करेगा। अंतस् की समृद्धि के अभाव में सांसारिक वस्तुएँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं और इससे विभिन्न प्रकार की तबाही एवं कष्ट उत्पन्न होते हैं। बालक को शिक्षा हम इसलिए देते हैं कि वह अपनी उचित वृत्ति खोज सके तथा उन व्यवसायों से बच सके जो व्यक्ति और व्यक्ति के बीच वैर का कारण बनते हैं। हम बालकों को शिक्षा इसलिए देते हैं कि वे स्वबोध, स्वयं को जानने की ओर बढ़ें, जिसके अभाव में न तो शांति संभव है और न स्थायी सुख। शिक्षा आत्म-तुष्टीकरण के लिए नहीं, बल्कि आत्मपरित्याग के लिए होती है।

उचित शिक्षा के अभाव में भ्रम को यथार्थ समझ लिया जाता है और तब अंतस् सदा ही द्वंद्व में रहता है। इसी से दूसरों के साथ अर्थात समाज के साथ द्वंद्व जारी रहता है। शिक्षण हम इसलिए करते हैं क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि संगठित धर्मों के सिद्धांतों अथवा कर्मकाण्डों से नहीं अपितु स्वबोध से ही मन शांत होता है; और वह सृजन, सत्य, ईश्वर केवल तभी प्रकट होता है जब 'मैं' और 'मेरा' का अंत हो जाता है।

'शिक्षा और जीवन का तात्पर्य' से
अनुवाद : डॉ. डी.एस. वर्मा

'स्वयं से संवाद'
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया
राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001
ईमेल : studycentre@rajghatbesantschool.org

संपादक : मुकेश
सलाहकार : शक्ति

छायाचित्र : उत्तरकाशी सेंटर एवं आस-पास (अरविन्द)

'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस–1/208 के–1 नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ. प्र.) से प्रकाशित। संपादक : मुकेश